भारत में ‘न्यू वुमन’ की कल्पना एक मिथक

A Woman with a Voice is by Definition a Strong Woman. But the Search to Find that Voice Can be Remarkably Difficult.

अर्थात्

परिभाषित है कि एक सशक्त महिला वह है जो अपने लिये आवाज़ उठाये। फिर भी, उस आवाज़ को पाना एक चुनौती हो सकती है।

— मेलिंडा गेट्स

‘न्यू वुमन’ या **‘नई/आधुनिक महिला’** पद की शुरुआत **19वीं सदी के अंत और 20वीं सदी के प्रारंभ में** हुई, जो समाज में महिलाओं की भूमिकाओं एवं पहचान में बदलाव का प्रतीक है। यह उन महिलाओं का प्रतिनिधित्व करता है जो पारंपरिक भूमिकाओं से परे जाकर शिक्षा प्राप्त कर रही थीं, कार्यबल में प्रवेश कर रही थीं और समान अधिकारों की मांग कर रही थीं। भारत में, इस अवधारणा ने **सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक कारकों से प्रभावित** होकर एक विशिष्ट आयाम ग्रहण किये हैं। जबकि **लैंगिक समानता** की दिशा में महत्त्वपूर्ण प्रगति हुई है, 'न्यू वुमन' के आदर्श की पूर्ति अब भी मायावी बनी हुई है, जो निरंतर मिथकों और वास्तविकताओं में उलझी हुई है तथा प्रगति एवं प्रतिगमन के जटिल परिदृश्य को प्रकट करती है।

भारत में 'न्यू वुमन' के विचार के संकेत **औपनिवेशिक काल** के उत्तरार्द्ध में मिलते हैं जब महिलाओं की स्थिति में सुधार के उद्देश्य से **सामाजिक सुधार आंदोलनों** को गति मिली थी। **राजा राम मोहन राय** एवं **ईश्वर चंद्र विद्यासागर** जैसे सुधारकों ने **सती प्रथा, बाल विवाह जैसी कुप्रथाओं के उन्मूलन** और **महिलाओं की शिक्षा, विधवा पुनर्विवाह** का समर्थन किया। स्वतंत्रता आंदोलन ने सार्वजनिक जीवन में महिलाओं की भागीदारी को और अधिक उत्प्रेरित किया, जिसमें **सरोजिनी नायडू एवं कस्तूरबा गांधी** जैसी हस्तियों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वतंत्रता के बाद, भारतीय संविधान ने सभी नागरिकों के लिये समानता सुनिश्चित की, जिसने महिलाओं के अधिकारों की नींव रखी।

इन प्रगति के बावजूद, पारंपरिक **पितृसत्तात्मक मानदंड** भारतीय समाज पर हावी रहे हैं। गहराई से जड़ जमाए सांस्कृतिक मानदंड और 'न्यू वुमन' की अवधारणा का टकराव हुआ, जिससे आधुनिकता और परंपरा के बीच एक जटिल अंतर्संबंध उत्पन्न हुए।

शिक्षा महिला सशक्तीकरण का एक महत्त्वपूर्ण निर्धारक है। हाल के दशकों में, भारत ने महिला साक्षरता दर में सुधार करने में उल्लेखनीय प्रगति की है। **राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय** (**NSO**) के अनुसार, भारत में महिला साक्षरता दर वर्ष 2001 में **53.7% से बढ़कर वर्ष 2011 में 70.3%** हो गई। हालाँकि, ये आँकड़े महत्त्वपूर्ण क्षेत्रीय असमानताओं और शिक्षा की गुणवत्ता पर पर्दा डालते हैं। ग्रामीण क्षेत्र, विशेष रूप से बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में, अभी भी पिछड़े हुए हैं, और लड़कियाँ प्रायः **गरीबी, कम उम्र में विवाह** या **घरेलू जिम्मेदारियों** के कारण स्कूल (या आगामी शिक्षा) छोड़ देती हैं।

महिलाओं के लिये रोज़गार के अवसर भी बढ़े हैं, क्योंकि अधिक महिलाएँ **इंजीनियरिंग, चिकित्सा** और **व्यवसाय** जैसे विविध क्षेत्रों में प्रवेश कर रही हैं। हालाँकि, **आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण (PLFS)** के अनुसार, **सत्र 2019-2020 में** कुल महिला श्रम बल भागीदारी दर कम रही है, जो **लगभग 20.3%** रही। सांस्कृतिक अपेक्षाएँ, सुरक्षित कार्य परिवेश की कमी और चाइल्डकैअर सुविधाओं जैसी अपर्याप्त सहायता प्रणालियाँ इस असमानता में योगदान करती हैं। काम करने वाली कई महिलाएँ अनौपचारिक क्षेत्र में कार्यरत हैं, जहाँ उन्हें शोषण, कम वेतन और नौकरी की असुरक्षा का सामना करना पड़ता है।

राजनीतिक भागीदारी ‘न्यू वुमन’ आदर्श का एक और महत्त्वपूर्ण पहलू है। भारत में महिलाओं को प्रमुख राजनीतिक पदों पर पहुँचते देखा गया है, जिसमें पहली महिला प्रधानमंत्री **इंदिरा गांधी** और पहली महिला राष्ट्रपति **प्रतिभा पाटिल** जैसी हस्तियों ने महत्त्वपूर्ण बाधाओं को तोड़ा है। इसके अतिरिक्त, **73वें और 74वें संवैधानिक संशोधनों** ने स्थानीय सरकारी निकायों में महिलाओं के लिये **एक तिहाई आरक्षण अनिवार्य** कर दिया, जिससे ज़मीनी स्तर पर उनकी राजनीतिक भागीदारी में उल्लेखनीय वृद्धि हुई।

हालाँकि, सरकार के उच्च स्तरों पर महिलाओं का प्रतिनिधित्व अभी भी अपर्याप्त बना हुआ है। वर्ष 2020 तक संसद के निचले सदन, **लोकसभा में** महिलाओं के पास **केवल 14% सीटें** हैं। राजनीतिक दल प्रायः महिला उम्मीदवारों को प्रवेश देने में हिचकिचाते हैं, क्योंकि जो चुनाव लड़ती हैं, उन्हें हिंसा, दुर्व्यवहार, भेदभाव और वित्तीय सहायता की कमी सहित कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इसके अलावा, जो महिलाएँ राजनीतिक सत्ता प्राप्त करती हैं, वे प्रायः प्रभावशाली परिवारों से होती हैं, जो उनके उत्थान में वंशवादी राजनीति की भूमिका को उजागर करती हैं।

सामाजिक और सांस्कृतिक मानदंड 'न्यू वुमन' के आदर्श की पूर्ति में प्रमुख बाधाएँ बने हुए हैं। पारंपरागत लैंगिक भूमिकाएँ और अपेक्षाएँ अभी भी महिलाओं के जीवन के कई पहलुओं को निर्धारित करती हैं, घरेलू कर्त्तव्यों से लेकर करियर विकल्पों तक। पितृसत्ता के व्यापक प्रभाव का मतलब है कि महिलाओं को प्रायः व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं और सामाजिक अपेक्षाओं के बीच एक नाजुक संतुलन बनाना पड़ता है।

विवाह और मातृत्व को अभी भी महिलाओं के लिये प्राथमिक भूमिकाएँ माना जाता है, इन भूमिकाओं के अनुरूप ढलने के लिये सामाजिक दबाव बहुत अधिक है। **सम्मान** और **पारिवारिक प्रतिष्ठा की अवधारणा** प्रायः महिलाओं के व्यवहार को निर्धारित करती है, जिससे उनकी गतिशीलता एवं विकल्पों पर प्रतिबंध लग जाते हैं। दहेज जैसी प्रथाएँ, हालाँकि अवैध हैं, देश के कई हिस्सों में जारी हैं, जिससे महिलाओं एवं उनके परिवारों पर वित्तीय तथा भावनात्मक बोझ पड़ता है।

मीडिया और लोकप्रिय संस्कृति भी पारंपरिक लैंगिक मानदंडों को प्रबल करने में भूमिका निभाते हैं। जबकि सुदृढ़, स्वतंत्र महिलाओं का प्रतिनिधित्व बढ़ रहा है, ये प्रायः रूढ़िवादी चित्रण के साथ सह-अस्तित्व में हैं जो स्त्रीत्व और समाज में महिलाओं की भूमिकाओं की पुरानी धारणाओं को मज़बूत करते हैं।

आए दिन महिलाओं के साथ होने वाली हिंसा एक गंभीर मुद्दा है जो 'न्यू वुमन' के आदर्श की दिशा में प्रगति को कमज़ोर करता है। भारत में **यौन उत्पीड़न**, **घरेलू हिंसा** और लिंग आधारित हिंसा के अन्य रूपों के रिपोर्ट किये गए मामलों में वृद्धि देखी गई है। वर्ष 2012 के निर्भया मामले ने **महिलाओं की सुरक्षा** के मुद्दे पर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय ध्यान आकर्षित किया, जिससे कानूनी सुधार एवं सक्रियता बढ़ी। इन प्रयासों के बावजूद, **राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB)** ने बताया कि **वर्ष 2022** में महिलाओं के प्रति होने वाले **अपराध के 4,45,256 मामले** थे।

इस मुद्दे से निपटने के लिये केवल कानून ही पर्याप्त नहीं हैं। कार्यान्वयन में प्रायः आचार भ्रष्टता होती है, और हिंसा के पीड़ितों के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण भी असहयोगी होता है। **पीड़िता को ही दोषी ठहराना** और **कलंक** महिलाओं को अपराध की रिपोर्ट करने से रोकता है, जबकि कानूनी प्रक्रिया लंबी और कठिन हो सकती है, जिससे दंड की दर कम हो जाती है। महिलाओं के लिये सुरक्षित माहौल सुनिश्चित करने के लिये न केवल कानूनी सुधारों की आवश्यकता है, बल्कि लैंगिक असमानता व हिंसा के प्रति जड़ जमाए दृष्टिकोण को चुनौती देने और इसे बदलने के लिये सांस्कृतिक एवं सामाजिक बदलाव की भी आवश्यकता है।

महिलाओं के सशक्तीकरण और 'न्यू वुमन' के आदर्श को साकार करने के लिये **आर्थिक स्वतंत्रता** महत्त्वपूर्ण है। जो महिलाएँ अपनी आय खुद कमाती हैं, वे अपने परिवार और समुदायों के भीतर अधिक स्वायत्तता एवं निर्णायक क्षमता प्राप्त कर सकती हैं।

हालाँकि, **लैंगिक वेतन अंतर** एक सतत् मुद्दा है, जिसमें **महिलाओं को** समान काम के लिये **पुरुषों की तुलना में काफी कम वेतन** प्राप्त होता है। महिलाओं को उच्च वेतन वाले, नेतृत्व वाले पदों पर भी कम प्रतिनिधित्व मिलता है, प्रायः एक ऐसी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है जो उनके करियर की उन्नति को सीमित करती है।

औपचारिक रोज़गार के अलावा, उद्यमिता महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण के लिये एक बढ़ता हुआ रास्ता है। **स्व-सहायता समूह (SHG)** आंदोलन के साथ ही **स्टैंड-अप इंडिया** और **मुद्रा योजना** नामक सरकारी योजनाओं जैसी पहल का उद्देश्य महिला उद्यमियों का समर्थन करना है। हालाँकि, ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं के लिये ऋण, प्रशिक्षण और बाज़ारों तक पहुँच सीमित है।

स्वास्थ्य और खुशहाली 'न्यू वुमन' के आदर्श को पूरा करने के लिये मौलिक आवश्यकताएँ हैं। भारत में महिलाओं के स्वास्थ्य में सुधार हुआ है, मातृ मृत्यु दर में कमी आई है और स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच बढ़ी है। हालाँकि, ग्रामीण क्षेत्रों में जहाँ स्वास्थ्य सेवा का बुनियादी ढाँचा अपर्याप्त है, वहाँ ये बहुत बड़ी चुनौतियाँ बनी हुई हैं।

प्रजनन स्वास्थ्य चिंता का एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। **गर्भनिरोधक और गर्भपात** हेतु **कानूनी सुविधा/सहायता** के बावजूद, कई महिलाओं को अपने प्रजनन स्वास्थ्य को लेकर निर्णय लेने के लिये आवश्यक जानकारी और सेवाओं का अभाव होता है। महिलाओं की **लैंगिकता और प्रजनन अधिकारों के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण** प्रायः कलंक एवं भेदभाव को जन्म देते हैं।

मानसिक स्वास्थ्य महिलाओं के कल्याण का एक और महत्त्वपूर्ण लेकिन प्रायः **उपेक्षित पहलू** है। कई **भूमिकाओं को संतुलित करने, भेदभाव से निपटने** और **हिंसा** का सामना करने का दबाव **महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य** पर भारी पड़ता है। मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच सीमित है, और मानसिक रोग से संबद्ध कलंक इस मुद्दे को और भी जटिल बनाता है।

भारत में महिलाओं के अनुभव एकसमान नहीं हैं। अंतःविषयकता का यह विचार कि **जाति, वर्ग और लिंग** जैसे सामाजिक स्तरीकरण के विभिन्न रूप एक दूसरे को ओवरलैप करते हैं, महिलाओं के जीवन को आकार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। **जाति, धर्म, जातीयता** और **सामाजिक-आर्थिक स्थिति** सभी इस बात को प्रभावित करते हैं कि महिलाएँ किस हद तक 'न्यू वुमन' के आदर्श को प्राप्त कर सकती हैं।

उदाहरण के लिये दलित महिलाओं को उनकी जाति और लिंग के कारण कई तरह के भेदभाव का सामना करना पड़ता है, उन्हें हिंसा एवं आर्थिक शोषण का उच्च स्तर झेलना पड़ता है। अल्पसंख्यक धार्मिक समुदायों की महिलाओं को भी अपनी पहचान से जुड़ी कुछ चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। शहरी और ग्रामीण महिलाओं के अनुभव काफी अलग-अलग हैं, ग्रामीण महिलाओं को प्रायः **शिक्षा, रोज़गार और स्वास्थ्य सेवा में अधिक बाधाओं का सामना** करना पड़ता है।

भारत में 'न्यू वुमन' के आदर्श की पूर्ति एक जटिल और बहुआयामी मुद्दा बना हुआ है। जबकि शिक्षा, राजनीतिक भागीदारी और कानूनी अधिकारों जैसे क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण प्रगति हुई है, गहरी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक बाधाएँ वास्तविक लैंगिक समानता में बाधा डालती रहती हैं। 'न्यू वुमन' की अवधारणा को साकार करने के लिये कई आयामों, नीति, सामाजिक दृष्टिकोण एवं व्यक्तिगत सशक्तिकरण में निरंतर प्रयासों की आवश्यकता है।

इस आदर्श को प्राप्त करने में संरचनात्मक असमानताओं को समाप्त करना शामिल है जो महिलाओं के अवसरों और स्वायत्तता को सीमित करती हैं। इसके लिये पितृसत्तात्मक मानदंडों को चुनौती देने और इसे बदलने, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवा तक पहुँच में सुधार करने, सुरक्षा सुनिश्चित करने तथा आर्थिक स्वतंत्रता को बढ़ावा देने के लिये एक ठोस प्रयास की आवश्यकता है। केवल एक समग्र और समावेशी दृष्टिकोण के माध्यम से ही भारत में 'न्यू वुमन' का

आदर्श वास्तव में फल-फूल सकती है।

We cannot All Succeed When Half of Us are Held Back.

अर्थात् जब हममें से आधे लोग पीछे रह जाएंगे तो हम सभी सफल नहीं हो सकते।

—मलाला यूसुफज़ई

PDF Refernece URL: https://www.drishtiias.com/hindi/printpdf/fulfillment-of-new-woman-in-india-is-a-myth